जयप्रकाश जी के रूप में स्वतंत्रता संग्राम की प्रथम पंक्ति में लड़ने वाले एक तपोपूत सत्ताविमुख, दल निरपेक्ष एवं निस्पृह व्यक्तित्व के मैदान में कूद पड़ने से जनमानस में — विशेषकर युवा-पीढ़ी में अभूतपूर्व आशावाद एवं उत्साह का संचार हुआ। जयप्रकाश जी जिन्हें राजनीतिक दृष्टि से लगभग निष्प्राण घोषित कर दिया गया था, रातोंरात भारत के सार्वजनिक जीवन के आकाश पर सबसे प्रबल शक्ति-ध्रुव बनकर उदित हो गये। उनका उपहास करने वाले राजनीतिज्ञों एवं दलों को भी उनके पीछे खड़े होने का निर्णय लेना पड़ा। जयप्रकाश जी का यह आकस्मिक पुनरोदय इस बात का प्रमाण है कि राष्ट्रीय मानस विगत 30 वर्ष की राजनीतिक कार्यशैली एवं उसमें से जन्मी राजनीतिक संस्कृति के प्रति तिरस्कार से भरा हुआ था और उसके विकल्प की खोज में व्याकुल था।

जयप्रकाश जी का व्यक्तित्व जुड़ जाने के कारण भारतीय राजनीति को कुछ समय के लिए पुन: एक नैतिक अधिष्ठान प्राप्त हुआ। उनके नैतिक बल के कारण ही प्रबल जनान्दोलन की सृष्टि हुयी, सत्ता का आसन डोल गया और आत्मरक्षा में उसे लोकतंत्र की पीठ में आपात स्थिति की घोषणा का छुरा भोंकने का सहारा लेना पड़ा। आपातकालीन अत्याचारों की तीव्र प्रतिक्रिया तथा जे० पी० के आंदोलन से उत्पन्न नैतिक वातावरण के फलस्वरूप ही केन्द्र में सत्ता परिवर्तन का अभूतपूर्व व अकल्पित चमत्कार घटित हो सका।

सत्ता बदली पर कार्यशैली वही

जयप्रकाश के नेतृत्व और समग्र क्रान्ति आंदोलन की पृष्ठ-भूमि में घटित सत्तापरिवर्तन ने राष्ट्र के उज्जवल भविष्य के प्रति एक बार फिर वैसी ही उमंग, उत्साह एवं आशावाद का वातावरण उत्पन्न कर दिया था जैसा कि सन् 1947 के पूर्व स्वतंत्रता प्राप्ति के समय प्रगट हुआ था। निश्चय ही भावह्विलता की इस मन:स्थिति का लाभ उठाकर राष्ट्र की कर्मशक्ति को रचनात्मक दिशाओं में प्रवाहित किया जा सकता था। जागृत लोक-शक्ति पर अधिष्ठित एक स्वच्छ एवं उदात्त सार्वजनिक जीवन को खड़ा करना संभव था। किन्तु इसे राष्ट्र के दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है कि इस सत्ता परिवर्तन में ही लोकनायक के समग्र क्रान्ति आंदोलन की इतिश्री मानी गयी और देश का राजनीतिक नेतृत्व सत्ता प्राप्ति की उठापटक में व्यस्त हो गया। परिणामस्वरूप, जागृत लोकशक्ति के निर्माण के लिए राष्ट्र के नाम लोकनायक का आह्वान अरण्यरोदन मात्र बनकर रह गया। सत्ता और दलों की राजनीति का विकल्प ढूँढने वाला समग्र क्रान्ति आन्दोलन भी मानो सत्ता और दलगत राजनीति की भंवर में फंसकर रह गया। वरिष्ठ नेतृत्व की देखादेखी समग्र क्रान्ति आंदोलन की रीढ़ कहलाने वाला युवा शक्ति भी टिकटों और मंत्रिपदों के लंबे क्यू में खड़ा हो गयी। राजसत्ता को ही सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के एकमात्र माध्यम के रूप में फिर से प्रस्तुत किया जाने लगा और पुन: सत्ताभिमुखी राजनीति सम्पूर्ण सार्वजनिक जीवन का केन्द्र बिन्दु बन गयी। फिर वही टिकटों और मंत्रिपदों के लिए जोड़तोड़ और राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता के दानव को उभाड़ने के राष्ट्रघाती प्रयत्न और वही चरित्रहनन की ओछी प्रक्रिया चल पड़ी। इससे अधिक और पीड़ा की बात क्या हो सकती है कि आपातकाल की भट्ठी में भुन जाने के बाद भी भारत की राजनीतिक संस्कृति में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं हुआ और वही पुरानी घिनौनी राजनीति ज्यों की त्यों वापस लौट आई। वस्तुत: प्रत्यक्ष जन सहयोग पर आधारित रचनात्मक कार्यशैली के अभाव में आत्मप्रचार, आंदोलन और जोड़तोड़ पर आधारित वर्तमान राजनीति के गर्भ से इससे भिन्न चरित्र की राजनीतिक संस्कृति का जन्म असंभव है।

समय की पुकार

राष्ट्रीय राजनीति के इस पतन और दिशा भ्रम का युवा पीढ़ी पर जो परिणाम होना चाहिए था वही हुआ। युवा पीढ़ी जो समग्र क्रान्ति आंदोलन में उभरकर आगे आई, आपातकालीन